# हिंदी का आत्मकथा साहित्य

सम्पादक
डॉ. प्रतिभा येरेकार
डॉ. प्रकाश शिंदे

मूल्य : पांच सौ पंचानवे रुपये मात्र


| | | |
|---|---|---|
| पुस्तक | : | हिन्दी का आत्मकथा साहित्य |
| संपादक | : | डॉ. प्रतिभा येरेकार, डॉ. प्रकाश शिंदे |
| प्रकाशक | : | **विकास प्रकाशन** |
| | | 311 सी, विश्व बैंक बर्रा - कानपुर - 208 027 |
| संस्करण | : | प्रथम, 2016 |
| आवरण सज्जा | : | छपाई घर, ब्रह्मनगर, कानपुर |
| शब्द सज्जा | : | रिचा ग्राफिक्स, नौबस्ता, कानपुर |
| मुद्रक | : | साक्षी ऑफसेट, यशोदा नगर, कानपुर |
| मूल्य | : | 595/- |
| ISBN | : | 978-93-81279-76-2 |

१३. अम्बेडकरी नारी मुक्ति प्रेरणा के परिप्रेक्ष्य में 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा का अनुशीलन — १०४
डॉ.शिवाजी भदरगे

१४. 'दोहरे शिकंजे' से मुक्त उड़ान की ओर — १११
प्रा.प्रणिता फड

१५. 'दोहरा अभिशाप' दलित स्त्री के अभिशप्त जीवन की कथा — ११५
प्रा.डॉ.रमेश संभाजी कुरे

१६. 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में नारी चित्रण — १२३
प्रा.डॉ.बळीराम बुक्तरे

१७. हिंदी आत्मकथा में स्त्री जीवन — १२७
प्रा.डॉ. झेड.एम.जंघाले

१८. 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में चित्रित दलित नारी — १३१
डॉ.रत्नमाला धूळे

१९. 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन — १३६
प्रा.डॉ.संतोष येरावार

२०. कौशल्या बैसंत्री लिखित दोहरा अभिशाप आत्मकथा में स्त्री भावना — १४०
डॉ.शेख हसीना बानो

२१. पितृसत्ताक तथा वर्चस्ववादी व्यवस्था से मैत्रेयी पुष्पा के सवाल ? — १४४
डॉ.गोविंद शिवशेट्टे

२२. 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मे स्त्री विमर्श — १४९
डॉ.अंजली चौधरी

२३. हिंदी आत्मकथा : 'सीधी राह चलता रहा' — १५४
डॉ.शंकर शिवशेट्टे

२४. साहित्यिक एवं साहसी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' — १६०
प्रा.मारोती लुटे

२५. 'अर्धकथा' डॉ.नगेंद्र की आत्मकथा — १६४
डॉ. सुधीर वाघ

# १९

# 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन

**प्रा. डॉ. संतोष विजय येरावार**

हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं ने लेखन के माध्यम से अपने अस्तित्व को स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। स्त्री जीवन के विभिन्न अंगों को उघाड़ने का कार्य स्त्री लेखिकाओं ने किया है। आत्मकथा लेखन के माध्यम से स्त्री की पीड़ा, त्रासदी एवं संत्रास, घुटनभरी मानसिकता, स्त्री होने का अपराध बोध तथा समाजकी संकुचित मानसिकता को अभिव्यक्त किया गया है। आत्मकथा लेखन के माध्यम से महिला लेखिकाओं न अपने वास्तविकता को विश्वसनीयता, सूक्ष्मता और गहराई से व्यक्त किया ह। अपनी पीडा को खुद शब्दबध्द कर समस्त स्त्रियों का जागत करने का प्रयास आत्मकथा के माध्यम से किया गया है।

स्त्री होने के कारण भोगी हुई तखलीफ, पुरुष प्रधान मानसिकता से निर्माण घुटन, और परंपरा के कारण निर्माण पीड़ा को पाठक के सामने भय और लज्जा को तिलांजलि दे आत्मकथा के माध्यम से रखने का साहस महिला लेखिकाओं ने किया है।

हिन्दी आत्मकथाओं में मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तुरी कुण्डल बसै'-'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में परंपरागत स्त्री विरोधी मुल्यो पर प्रहार किया गया है। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में पुत्री को पुत्र के सामने तुच्छ एवं मूल्यहीन माना जाता है। इस लिंगभेद के पक्षपाती भाव को उजागर किया गया है। पद्मा सचदेव की 'बूंद-बावड़ी' में पारिवारिक समस्या को उजागर किया है। कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया' जीवनस्मी आत्मकथा है। 'दोहरा अभिशाप' कौसल्या बैसंती की आत्मकथा में दलित स्त्री होने का अभिशाप तो दूसरी ओर नारी होने का। रमणिका गुप्ता की 'हादसे' अन्तरजातीय विवाह सें निर्माण स्त्री समस्याओं का लेखा जोखा है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री अधिकार की पैरवी की गई है और वैवाहिक जीवन न मिलने की विवशता है। डॉ. प्रतिभा अग्रवाल की 'दस्तक जिंदगी की, मोड़ जिंदगी का' आत्मकथाओं में नारी के सामर्थ्य का बोध होता है। उर्मिला पवार की आत्मकथा 'आयदान' में स्त्री के संघर्षमय जीवन का चित्रण हुआ हैं।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा के माध्यम से सुशीला टाकभौरे ने दलित स्त्री की वेदना को उजागर किया है। एक ओर स्त्री को पुरुषी अहंकार का सामना करना होता है और दूसरी ओर समाज की जातिवादी एवं वर्णवादी मानसिकता का। इन दो कठिन पाटों की बीच स्त्री निरंतर संघर्ष करती रहती है। शिकंजे का दर्द पुरुष और समाज के शिकंजे में फँसी स्त्री की गाथा है। शिकंजे का दर्द के संदर्भ में सुशीला टाकभौरे लिखती हैं, "शिकंजा यानी पंजा, जिसकी जकड़न में रहकर कुछ कर पाना कठिन है। शिकंजा यानी कठघरा जिसमें

कैद होकर उसके बाहर जाना कठिन है।"[१] वह आगे कहती है, "जिस तरह किसी ताकतवर शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगन्य बना दिया जाता है। उसी तरह से मुझे भी सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता ने, वर्णवादी-जातिवादी समाज व्यवस्था नें शिकंजे में जकड़कर रखा, जिसका परिणाम पीड़ा-दर्द, छटपटाहट के शिवा कुछ नही हैं।"[२] वह आगे कहती है "आदर्श के नामपर स्त्री शोषण किया जाता है। अपने घर-परिवार के शोषण, अत्याचार की बात बताने वाली स्त्री को अच्छा नही कहा जाता। अपने अधिकारों की बात करनेवाली स्त्रियों को भी समाज अच्छा नहीं मानता।"[३] एक ओर मनुवादी विषमता ने स्त्री का शोषण किया है तो दूसरी ओर पुरुषी अहंकार ने उसे प्रताड़ित किया है। परिवार और समाज में स्त्री को न कोई महत्व दिया जाता है और न कोई स्थान वह तो केवल गुलाम के भाँति उपभोग की वस्तु मात्र तक सीमित रह गई है।

सुशीला जी को बचपन से ही अपमान, उपेक्षा, निंदा, अपमान, घृणा और अभाव भरा जीवन मिला और यह सिलसिला विवाह के पश्चात भी बरकरार रहा। सुशीला टाकभौरे लिखती हैं, "कक्षा में ब्राम्हण, बनियों के बच्चों को सबसे आगे बिठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चों को पीछे बिठाया जाता था। अछूत बच्चे सबसे पीछे बैठते थे। कक्षा में यह श्रेणी वर्गीकरण जैसी थी, इससे हमें अपने वर्ण और जाति का आभास हमेशा रहता था।"[४] छात्र जीवन में ही उन्हें समाज की तिरस्कार, द्वेष और घृणा का सामना करना पड़ा और विवाह के पश्चात भी स्थिति नहीं बदली सुशीला जो कमाकर लाती वह उसे अपने पति को देना पड़ता। ना कुछ पूछने का अधिकार ना खर्च करने का अधिकार अर्थात पति के द्वारा भी उपेक्षा और अभाव भरा जीवन सुशीला जी को मिला। सुशीला टाकभौरे लिखती हैं "उन्होंने यह नीति अपना ली थी- अपने वेतन का हिसाब कभी नहीं बताते थे, मेरा वेतन पूरा ले लेते थे, मुझे पता नहीं चलता, कहाँ क्या खर्च हो रहा है वे चाहते थे, मैं अपना वेतन हमेशा उन्हें देती रहूँ कभी कोई हिसाब न मांगू, ऐसा न होने पर मैं घर में हिंसा का शिकार बनती। छोटी सी बात होते ही छड़ी उठा लेते, वे छड़ी हमेशा छुपा के रखते थे।"[५] समाज के हर तबके ने एक निश्चित दूरी बनाई रखी थी।

सदियों से स्त्री का जीवन बंदिस्त एवं पतित रहा है। स्त्री के अस्तित्व को पुरुषी मानसिकता और स्त्री जीवन तक ही सीमित रखा गया है। वह स्त्री रूपी कटघरे कों सदियों से लांघ नहीं पाई है। स्त्री को सदैव पिता, भाई और पति ने नियंत्रित और संचलित किया है। पति जैसा चाहेगा, जैसा सोचेगा, जैसा कहेगा वैसा ही स्त्री को करना पड़ेगा। उसका स्वतंत्र अस्तित्व कोई मायने नहीं रखता है। वह पुरुषों द्वारा निर्मित कटघरे में बंदिस्त हो जाती है। लड़कियों को बचपन से ही लड़की होने का डर दिखाया जाता है और उसके रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, आचार-विचार को बंदिस्त एवं नियंत्रित किया जाता है। जैसे बैलगाड़ी चलानेवाला अपनी मर्जी से बैलों को नियंत्रित करता है। ठीक उसी तरह पुरुषों द्वारा स्त्रियों को नियंत्रित किया जाता है। खेद की बात यह है की, पुरुषी मानसिकता की गुलाम स्त्री भी लड़की को दायरे में बाँधती है। परिणामस्वरूप स्त्री को अपने तरीके से जीवन न जीते हुए बंदिस्त एवं संकुचित जीवन जीना पड़ता है। सुशीला जी को उनकी माँ कहती हैं, "बेटी दुनिया बहुत खराब है। अकेली कहीं नहीं जाना। जहाँ जाना हो, हमको

बताओ, हम साथ चलेंगे।"[६] विवाह के पश्चात भी सुशीला जी के जीवन में पीड़ा, दु:ख और अभाव का ही बोल बाला रहा है। न विवाह से पूर्व अजादी न विवाह के पश्चात। सुशीला को पति और उनके परिजनों द्वारा सदैव प्रताड़ित किया जाता, सुशीला को जब मारा और लथाड़ा जाता तब चिल्लाने की आवाज बाहर न जाए इसलिए बढ़ी आवाज में घर में रेडियो बजाया जाता। घर के सारे काम एक गुलाम की भाँति बिना किसी विरोध के करने पड़ते। सुशीला जी का विवाह उनसे दुगनी उम्र के व्यक्ति के साथ किया जाता है। परिणाम स्वरूप संतति न होने के कारण उसे ताने कसे जाते हैं। अपमानित और प्रताड़ित किया जाता। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था नें स्त्री की पूर्णता को संतति प्राप्ति तक ही सीमित रखा है। स्त्री अगर परिवार का वारिस नहीं दे सकती तो उसका जन्म निरर्थक माना जाता है। खामियाँ चाहे पुरुष में हों सारा दोषारोपण स्त्री पर किया जाता हैं। बांझ औरत को अपशकुनी माना जाता है। और सबसे दु:ख की बात यह है की, स्त्री को पुरुषों से अधिक अपमानित और प्रताड़ित करने का कार्य महिला द्वारा ही किया जाता है। सास, ननद, देवरानी, जेठानी, पड़ोसी औरतें उसे निरंतर ताने कसते रहते हैं, और स्त्री को घुटन भरी मानसिकता में जीना पड़ता है। वह एक जिन्दा लाश हो जाती है।

आदर्श, संस्कार और चरित्र के नाम पर स्त्री शोषण की अधिकारी बन जाती है। स्त्री जन्म पुराने जन्मों के पापों के कारण प्राप्त होने का आभास उसे निरंतर होते रहता है। इसी कारण अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के बजाय वह अपने नसीब को कोसती रहती है। घर में निरतंर चल रहा शोषण, काम और घुटन स्त्री को कमजोर और शुष्क बना देता है, और यह कहानी हर स्त्री की कहानी है। संत्रास, घुटन, तिरस्कार और दु:ख के कारण जीवन के प्रति स्त्री के मन में निराशा निर्माण हो जाती है। स्त्री को अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। वह स्त्री होने के कारण अपने आपको कोसती रहती है। सुशीला जी को वैवाहिक सुख कभी मिला ही नहीं वह अपने आप से सवाल करती है, "मेरा हाल अलग था। मेरी दुनिया अलग थी। मेरा मन अजीब-सा महसूस करता था- शादी क्या है ? पति क्या है? सुख क्या है ? अपमान क्या है ? सब निरर्थक लगते थे।"[७]

स्त्री को जब अपनी वास्तविकता का और स्त्री अस्तित्व का बोध हो जाएगा और वह आत्मनिर्भर बन जायेगी तभी वह पुरुषों की गुलामी और नियंत्रण को नकारेगी। सुशीला जी को अजय शास्त्री ने कहा "आप अपनी साईन करते समय टाकभौरे क्यों लिखती हैं ? टाकभौरे आपके पति का सरनेम है। अपनी साइन अपनी खुद की पहचान होती है।"[८] यह सुनकर सुशीला जी को अपने स्त्री के अलग अस्तित्व होने का बोध होने लगता है। और सुशीला जी महिला जागृति संस्था से जुड़ी, महिला मुक्ति आंदोलन की संस्थाओं से जुड़कर दलित, आदिवासी और शोषित-वंचित स्त्रियों के लिए कार्य किया। जब स्त्री को अपने अस्तित्व का बोध हो जाएगा तब वह अपनी अलग पहचान कायम करने में सफल हो जाएगी अन्याय, अत्याचार और तिरस्कार के विरोध में अपनी आवाज बुलंद करेगी। इसी बात का प्रमाण सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' है।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में स्त्री जीवन की यथार्थता का बोध होता है। निडरता से लोकलाज और पारिवारिक बंधनों को तोड़कर सुशीलाजी ने अपने वास्तविकता को

समाज के सामने लाया उनकी वास्तविकता को उघाड़ने का उद्देश्य ही स्त्री को दोहरे शोषण से मुक्त होने के लिए प्रेरित करना उनका दिशा निर्देश करना है। इस आत्मकथा का केंद्र दलित स्त्री है। दलित होने की पीड़ा, समाज की जातिवादी, वर्णवादी मानसिकता तो दूसरी ओर पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण निर्माण भोगवादी एवं शोषणप्रधान प्रवृत्ति है। सुशीला टाकभौरे का मानना है कि, समाज के विभिन्न घटकों के शोषण से मुक्ति पाना ही, दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है, वे अपने मनोगत में कहती हैं, "मेरी आत्मकथा दलित आत्मकथा होने के साथ एक स्त्री की आत्मकथा भी है। दलित स्त्री को दोहरे सन्ताप से मुक्ति चाहिए।"[९]

आत्मकथा के माध्यम से स्त्रियों की अन्तर्मन की व्यथा, वेदना, पीड़ा, घुटन की अभिव्यक्ति हुई है पुरुषों ने स्त्रियों को केवल अपनी हाथों की कठपुतली माना है। उसे अपनी वासना का शिकार बनाया है। स्त्रियों की भावनाओं का दमन किया है। अपनी इच्छानुसार उसका इस्तेमाल किया है। परंतु अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती स्त्रियों ने शोषण के विरोध में आवाज उठाकर नए पर्व का प्रारंभ किया है। जिसका एहसास महिला आत्मकथाओं में होता है।

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीलाजी ने अपने जीवन में घटित सभी घटनाओं को ईमानदारी से पाठकों के सामने रखा है। यह आत्मकथा स्त्री के व्यथा और त्रासदी का प्रमाण है। पितृसत्ताक समाज व्यवस्था द्वारा नारी पर होने वाले अत्याचार, विवाह संस्था की विकृतियाँ, नारी आत्मविश्वास और अस्तित्व को बाधित करनेवाली मनोवृत्ति, पति और उनके परिवार की खलनायकी भूमिका, आर्थिक आत्मनिर्भरता हेतु संघर्ष करती नारी तथा नारी को सचेत कर जाग्रत करने की बेचैनी आत्मकथा में अभिव्यक्त हुई है। नारी जीवन की वास्तविकता का परिचय और नारी की संघर्ष गाथा का बोध 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा के माध्यम से होता है।

## संदर्भ सूची


१. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. ०५
२. वही, पृ.सं. ०४
३. वही, पृ.सं. ०५
४. वही, पृ.सं. १८
५. वही, पृ.सं. १९६
६. वही, पृ.सं. ३५
७. वही, पृ.सं. १४८
८. वही, पृ.सं. १८४
९. वही, पृ.सं. ०७


**प्रा.डॉ.संतोष विजय येरावार,**
देगलूर महाविद्यालय देगलूर.
ता.देगलूर जि. नांदेड (महा.)
८०८७००४९७२